बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 263

वित्तीय स्थिरता का बचाव

अमेरिकी केंद्रीय बैंक फेडरल रिजर्व की फेडरल मुक्त व्यापार समिति ने वर्ष 2019 में अपनी नीतियों में बदलाव किया। यह बदलाव अमेरिका-चीन व्यापार विवाद समेत अन्य वजहों से बढ़ रही आर्थिक अनिश्चितता से निपटने के लिए किया गया। फेड ने वर्ष 2019 में दरों में तीन बार कटौती की जबकि 2018 में इसमें चार बार इजाफा किया गया था। ताजा अनुमान बताते हैं कि अमेरिकी केंद्रीय बैंक 2020 में ब्याज दरों को अपरिवर्तित रख सकता है। इस बीच यूरोपीय केंद्रीय बैंक ने अपनी जमा दर को नकारात्मक करने के बाद परिसंपत्ति खरीद का दौर शुरू किया है। बैंक ऑफ जापान ने वृद्धि और कीमतों को समर्थन देने के लिए परिसंपत्ति खरीद का सिलसिला जारी रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्विक वित्तीय हालात निकट भविष्य में उदार बने रहेंगे। उदार मौद्रिक नीति जहां वैश्विक वृद्धि के लिए मददगार साबित होगी, वहीं यह परिसंपत्ति कीमतों और नकदी की स्थिति में सुधार कर वित्तीय तंत्र के लिए जोखिम भी बढ़ा सकती है। अनुभव बताता है कि अमेरिकी मौद्रिक नीति वैश्विक वित्तीय चक्र पर बहुत असर डालती है। इस संदर्भ में देखें तो भारत को भी अपने हितों का बचाव करना होगा। नीति निर्माताओं को भी वित्तीय स्थिरता का संरक्षण करने के लिए हस्तक्षेप करने होंगे। हाल के वर्षों में मौद्रिक सख्ती और नरमी का अध्ययन करने वाली रेटिंग एजेंसी क्रिसिल का एक नया अध्ययन बताता है कि सख्ती के दिनों में विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (एफपीआई) में कमी आई जबकि नरमी के दिनों में वह बेहतर रहा। वित्तीय संकट के बाद की मौद्रिक सहजता के दौर में एफपीआई की आवक मजबूत थी, हालांकि उस दौर में घरेलू वृहद स्थिति कमजोर थी। बहरहाल, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की राह इससे अलग थी और वह घरेलू अर्थव्यवस्था से अधिक करीबी से जुड़ी रही। नरमी के दिनों से तुलना करें तो भारत को सख्ती के दिनों में अधिक एफडीआई हासिल हुआ क्योंकि उस दौर में वृद्धि मजबूत थी।

वित्त वर्ष 2014-19 के दरमियान अर्थव्यवस्था 7.3 फीसदी की दर से विकसित हुई। अर्थव्यवस्था में धीमापन आने के साथ एफडीआई की आवक भी धीमी हुई। देश को आर्थिक वृद्धि में नई जान फूंकनी होगी ताकि बचत के अंतर को पाटने के लिए पूंजी जुटाई जा सके। चालू खाते का घाटा पाटने के लिए पोर्टफोलियो आवक पर अधिक निर्भरता जोखिम बढ़ा सकती है। फेड की नीतिगत उदारता से बाह्य वाणिज्यिक उधारी भी बढ़ सकती है। हालांकि भारतीय रिजर्व बैंक ने हाल के दौर में नीतिगत दरों में 135 आधार अंकों की कमी की है लेकिन इसका असर दरों में कमी के रूप में नहीं दिखा है। इससे देश के कारोबारियों को बाहर से ऋण लेने का प्रोत्साहन मिल सकता है। खबरों के मुताबिक इस वर्ष के आरंभिक 10 महीनों में भारतीय कंपनियों ने विदेश से 13.74 अरब डॉलर की राशि जुटाई। पिछले वर्ष की समान अवधि में यह मात्रा 1.65 अरब डॉलर थी।

बाहरी उधारी और पोर्टफोलियो आवक में उच्च वृद्धि आरबीआई को चुनौती दे सकती है। यह रुपये पर दबाव बना सकती है और निर्यात को प्रभावित कर सकती है। वास्तविक प्रभावी विनिमय दर में अधिमूल्यन नजर आ रहा है। इसने हाल के वर्षों में निर्यात पर असर डाला है। हालांकि वस्तु एवं सेवा कर के क्रियान्वयन की दिक्कतों की भी भूमिका है। यदि आरबीआई एक बार फिर हस्तक्षेप करता है तो तंत्र में रुपया बढ़ेगा जो मुद्रास्फीति को प्रभावित कर सकता है। ऐसे में वैश्विक माहौल के मद्देनजर भारत को विदेशी फंड प्रवाह की प्राथमिकता समझदारी से तय करनी होगी। भारत एफडीआई के लिए माहौल बना सकता है और ऋण प्रवाह पर निर्भरता कम कर सकता है। हालांकि चालू खाता घाटा सहज स्तर पर रह सकता है लेकिन धीमी वृद्धि के समय डॉलर डेट में इजाफा और बढ़ता राजकोषीय दबाव वित्तीय स्थिरता को प्रभावित कर सकते हैं।

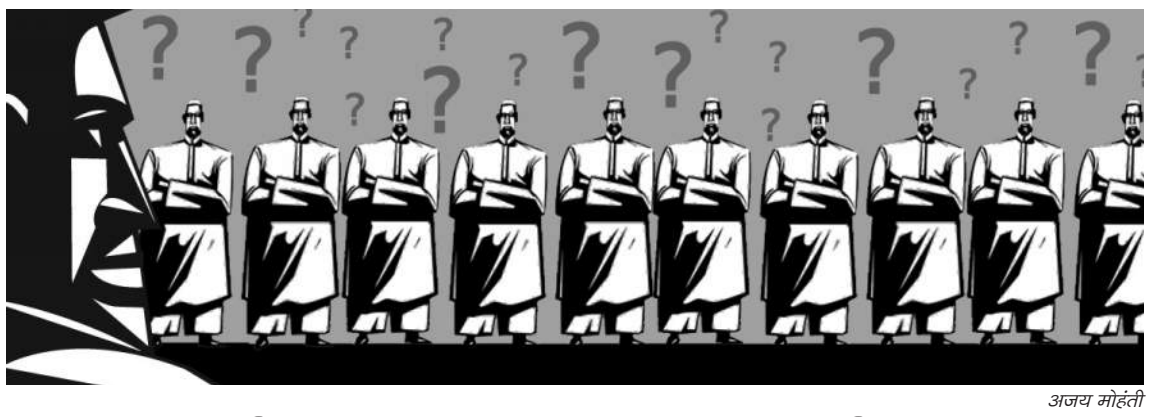

अजय मोहंती

भारतीय, राष्ट्रवादी और मुस्लिम

नया हिंदुस्तानी मुस्लिम उभर रहा है। वह कपड़े तो मुस्लिमों की तरह पहनता है लेकिन अपनी देशभक्ति, राष्ट्रवाद, तिरंगे के लिए प्यार, राष्ट्रगान और संविधान से अपना लगाव भी जाहिर कर रहा है।

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

भारतीय गणराज्य को मशहूर लेखिका-सामाजिक कार्यकर्ता अरुंधती रॉय का शुक्रगुजार होना चाहिए। उन्होंने अकेले अपने बूते पर देश को सशस्त्र माओवादी बगावत से बचाया।

ऐसा तब हुआ जब उन्होंने देश के माओवादियों को 'बंदूक वाले गांधीवादी' करार दिया। यह ऐसा उद्धरण था जो लंबे समय तक जिंदा रहेगा। इसने माओवादियों के पीड़ित होने को लेकर रही-सही सहानुभूति भी समाप्त कर दी। मार्केटिंग जगत का एक पुराना सच यह है कि झूठ सबसे तेजी से गिरता है। आप एक साथ गांधीवादी और माओवादी नहीं हो सकते। दिल्ली में बहादुर शाह जफर मार्ग स्थित मेरे कार्यस्थल से 15 मिनट की दूरी पर या कहें एक मेट्रो स्टेशन भर की दूरी पर स्थित 17वीं सदी की जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर शुक्रवार को जो हजारों मुस्लिम एकत्रित थे, उन्हें देखते हुए मैं सोच रहा था कि अरुंधती इन्हें क्या नाम देतीं?

इन मुस्लिमों का 'पहनावा' मुस्लिमों जैसा है। मुझे यह इसलिए कहना पड़ रहा है क्योंकि हमारे प्रधानमंत्री ने अभी हाल में कहा है कि लोग जो कपड़े पहनते हैं उनसे उनके इरादों का पता लग जाता है। ये तिरंगे, संविधान और बाबा साहेब आंबेडकर और कुछेक तो महात्मा गांधी की तस्वीरों से 'लैस' थे। वे 'जन गण मन' और हिंदुस्तान जिंदाबाद के नारे लगा रहे थे। वाम-उदारवादी विश्वदृष्टि के अनुसार राष्ट्रवाद के आक्रामक प्रतीकों यानी राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का प्रदर्शन तो बहुसंख्यक राष्ट्रवाद का ही अतिरंजित प्रतीक है और यह अंध राष्ट्रवाद की दिशा में अंतिम कदम है।

क्या होता है जब गणतंत्र का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समूह अपनी सबसे पवित्र मस्जिद की सीढ़ियों पर एकत्रित होकर कहता है कि वे सबसे पहले भारतीय हैं, वे संविधान, देश के ध्वज और राष्ट्रगान में आस्था रखते हैं और इस विचार को खारिज करते हैं कि कोई इस गणराज्य को नए सिरे से परिकल्पित कर सकता है चाहे उसे कितना भी बड़ा बहुमत क्यों न हासिल हो। देश में आए बदलाव को समझने के लिए गहराई से सोचना होगा। मुस्लिम भारतीय देशभक्ति पर बहुसंख्यकों के प्राथमिक दावे को प्रश्नांकित कर रहे हैं। यह काफी कुछ वैसा ही है जैसा ब्रिटेन में चार दशक पहले नस्लवाद के उभार के बाद प्रवासी (जिनमें अच्छे खासे भारतीय थे) कहा करते थे: चाहे कुछ भी हो हम यहीं रहने वाले हैं।

उनसे कोई लड़ नहीं सकता। उनके ऊपर गोली चलाने की कोई वजह नहीं है। देश बदल चुका है। आज की भाषा में कहा जा सकता है: मेरा देश बदल गया है, मित्रों। आप उन्हें सीएसएस और एनआरसी के बीच, नागरिक और शरणार्थी के बीच का भेद भी नहीं समझा जा सकते। आप पहले ही काफी कुछ कह चुके हैं, खासतौर पर 2021 के पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव को ध्यान में रखते हुए। आपने दो चीजें हासिल करने के लिए यह कदम उठाया।

एक, असम में एनआरसी में फंसे बंगाली हिंदुओं को बचाना और बंगाली मुस्लिमों को निकालना। दूसरा, पश्चिम बंगाल के हिंदुओं को इसे दोहराने के वादे से बहलाना। असम में एक आग बुझाने और पश्चिम बंगाल में दूसरी लगाने के क्रम में आपने दिल्ली में आग लगा दी। जामा मस्जिद राष्ट्रपति भवन से महज 7 किलोमीटर की दूरी पर है। वहां धारा 144 लगी थी और उसकी अवमानना कौन और कैसे कर रहा था?

कपड़े जिसमें टोपियां, बुरका, हिजाब और हरा रंग शामिल हैं, मुस्लिमों की सबसे बड़ी पहचान रही हैं। उनके मजहबी नारों को भी इसमें शामिल किया जा सकता है। ऐसी ही एक पहचान उन दो युवा महिलाओं में से एक के फेसबुक पन्ने से उठाई गई जो अपने एक पुरुष मित्र को बचाने के लिए ढाल बन गई थीं। इससे यह नतीजा निकाल कर प्रचारित किया गया कि वे राष्ट्रवाद या धर्मनिरपेक्षता के प्रति किसी प्रतिबद्धता से नहीं बल्कि कट्टर इस्लाम से प्रेरित हैं। नाराज मुस्लिमों के इससे भी कठोर प्रतीक रहे हैं। मसलन एके-47, आरडीएक्स, कई मुजाहिदीन और लश्कर, अलकायदा और आईएसआईएस आदि। उन क्रोधित मुस्लिमों से लड़ना और उन्हें परास्त करना आसान है। हाल ही में जयपुर की एक अदालत ने ऐसे चार लोगों को सिलसिलेवार धमाकों के इल्जाम में मौत की सजा सुनाई। करीब तीन दशक से असल चिंता यह रही है कि यदि मुस्लिम वाकई हताश होकर आतंक की राह पर गए तो क्या होगा?

सिमी से लेकर इंडियन मुजाहिदीन तक छोटे समूहों ने इस धारणा की पुष्टि की है। यहां तक कि डॉ. मनमोहन सिंह जैसे उदार और दूरदर्शी व्यक्ति ने 2009 में कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में वरिष्ठ पत्रकारों के साथ बातचीत में कहा था कि मुस्लिमों को विशेष तरजीह देने की शिकायत कर रहे लोगों को समझना चाहिए कि यदि देश की कुल मुस्लिम आबादी का एक फीसदी भी यह सोच लेता है कि भारत में भविष्य नहीं है तो देश शासन करने लायक नहीं रह जाएगा। वह संप्रग का दौर था जहां मुस्लिमों के प्रति इसलिए उदारता जरूरी थी कि कहीं वे गलत राह न पकड़ लें।

फिर भी कुछ मुस्लिम उस राह पर गए। संप्रग उनसे उतनी ही कड़ाई से निपटा जितना शायद आज राजग करे। बाटला हाउस मुठभेड़ इसकी बानगी है। आज इन तथ्यों की कई तरह की व्याख्या हो सकती है। परंतु निष्कर्ष एक ही होगा। एक पक्ष मुस्लिमों के प्रति अफसोस के साथ संतुष्ट करना चाहता है ताकि वे राष्ट्र विरोधी न हों। दूसरा एक आंख के बदले दोनों आंखें चाहता है। बल्कि वह बहुसंख्यक वर्ग से जवाबी आतंकी बचाव भी चाहता है। दोनों ही मुस्लिमों को संदेह से देखते हैं।

भारतीय मुस्लिमों की एक अन्य नकारात्मक बात उनके धार्मिक नेता- जामा मस्जिद के बुखारी, मदनी और वे दाढ़ी वाले जो चैनलों पर आकर हास्यास्पद फतवों का बचाव करते दिखते हैं।

इनकी तादाद बहुत ज्यादा है। आपको हमेशा कोई न कोई बुखारी या मदनी किसी न किसी मुद्दे पर राय देते दिख जाएंगे। बाबरी-अयोध्या निर्णय को ही देखिए या बुखारी का यह कहना कि सीएए-एनआरसी मुस्लिमों के लिए खतरा नहीं है। परंतु वह उस मस्जिद की सीढ़ियों पर एकत्रित हजारों लोगों से यह बात कहने का साहस नहीं कर सकते जिसके वह संरक्षक हैं।

हो सकता है सबकुछ एकदम बेहतरीन न हो लेकिन आज इन नकारात्मक छवियों को चुनौती मिल रही है। कलमा की जगह 'जन गण मन', हरे झंडे की जगह तिरंगा, काबा के बजाय आंबेडकर और गांधी की तस्वीरें तथा हिंदुस्तान जिंदाबाद के नारे सुनाई दे रहे हैं। एक चीज जो नहीं बदली है, वह हैं कपड़े। जैसा हमने पहले कहा, ये मुस्लिमों के पहनावे वाले मुस्लिम हैं। वे हमें याद दिला रहे हैं किसी भारतीय के पहनावे और उसकी देशभक्ति में कोई विरोधाभास नहीं है। या एक नागरिक के रूप में उनसे संविधान की अपेक्षाओं पर भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बड़ी रूढ़ि टूट रही है।

जो लोग भारतीय मुस्लिमों को 'सभ्यताओं के संघर्ष' के चश्मे से देखते हैं वे बड़ी गलती कर रहे हैं। सन 1947 में भारतीय मुस्लिमों का एक बड़ा हिस्सा जिन्ना के साथ अपने नए मुल्क पाकिस्तान चला गया। जिन्ना के बाद के 72 वर्षों में उन्होंने किसी मुस्लिम को अपना नेता नहीं माना। उन्होंने हमेशा गैर मुस्लिम पर यकीन किया।

अभी भी बहुत कुछ शेष है क्योंकि हर कोई उतना संयत और समझदार नहीं है जितना कि जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर एकत्रित लोग। जामा मस्जिद से सटे पुरानी दिल्ली के दरियागंज में कारें जलाई गईं। उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात हर जगह हिंसक तत्त्व सक्रिय हैं। पश्चिम बंगाल हिंसा के मुहाने पर है। परंतु इनमें से कोई उस बदलाव को ढक नहीं सकता जो भारतीय मुस्लिमों ने दिल्ली में दिखाया है।

वे नए भारतीय मुस्लिमों के उभार का संकेत दे रहे हैं। वे मुस्लिम दिखने से नहीं डरते और न ही अपने राष्ट्रवाद का प्रदर्शन करने से। वे संविधान, भारतीय ध्वज, राष्ट्रगान, आंबेडकर और गांधी के साथ हिंदुस्तान जिंदाबाद का नारा लगाते हुए अपनी लड़ाई जारी रखना चाहते हैं। ऐसे समय में शायर राहत इंदौरी का शेर प्राय: दोहराया जा रहा है: सभी का खून है शामिल यहां की मिट्टी में, किसी के बाप का हिंदोस्तान थोड़ी है। वह यकीनन मुस्करा रहे होंगे।

समाज को वही कानून मिलता जिसका वह पात्र होता

बाअदब

सोमशेखर सुंदरेशन

हम असाधारण समय में जी रहे हैं। पिछली बार जब मैं यह स्तंभ लिख रहा था तब प्याज और आर्थिक मंदी कारोबारी और उद्योग जगत की चेतना पर हावी थे। इस पखवाड़े देश के शैक्षणिक संस्थानों में अप्रत्याशित और असाधारण विरोध प्रदर्शन देखने को मिला। कुछ लोग कहेंगे कि यह देशव्यापी था जबकि अन्य यह भी कह सकते हैं कि देश के 400 विश्वविद्यालयों में से केवल 22 में ऐसा हुआ।

अगर माना जाए कि नागरिकता संशोधन कानून कारोबारी जगत में लागू हो, तो कुछ ऐसा परिदृश्य बनेगा: एक ऐसे कानून की कल्पना कीजिए जिसके तहत कुछ ऐसे उद्योगों को चिह्नित किया जाए जो कठिनाई से गुजर रहे हों। उदाहरण के लिए दूरसंचार, बिजली और इस्पात। कल्पना कीजिए कि ईंधन कीमतों में ऐसा बदलाव आता है, बिजली क्षेत्र अव्यवहार्य हो जाए, राजस्व साझेदारी की व्याख्याओं में गड़बड़ी की वजह से दूरसंचार क्षेत्र अव्यवहार्य हो जाए और चक्रीय दबाव इस्पात क्षेत्र को अव्यवहार्य बना दें। नागरिकता संशोधन अधिनियम में भी तीन देशों का चयन किया गया है- पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान।

साथ ही यह कल्पना कीजिए कि उद्योगपति कह रहे हैं कि वे दशकों तक भारी-भरकम कर दरों से उत्पीड़ित होते रहे हैं। इंदिरा गांधी के कार्यकाल में प्रभावी कर दर 90 प्रतिशत से अधिक थी। परंतु कल्पना कीजिए कि कानून ऐसी भीषण राजकोषीय व्यवस्था के कारण उत्पन्न कठिनाइयों और अत्याचार को लेकर खामोश रहा हो और ऐसे उत्पीड़न की बिना पर इसका बचाव किया जा रहा हो। नागरिकता संशोधन में इस बारे में कुछ नहीं कहा गया है कि धार्मिक उत्पीड़न को अवैध प्रवासियों को वैध बताने की वजह माना जाएगा।

अब कानून में ऐसे संशोधन की कल्पना कीजिए जिसके तहत इन तीन उद्योगों में कार्यरत किसी भी व्यक्ति को विधिक दायित्वों से पूरी तरह बरी कर दिया जाए चाहे उसने भारी-भरकम बेनामी संपत्ति जुटा रखी हो या उस पर सरकार का लंबा चौड़ा बकाया हो। नागरिकता संशोधन कानून केवल इन तीन देशों के बारे में कहता है कि इनके अवैध प्रवासियों को अवैध नहीं माना जाएगा।

इसके अलावा कल्पना कीजिए कि उन लोगों को भी विधिक दायित्व से निजात मिलेगी जिनका शायद उन भयंकर कर दरों वाले युग में जन्म भी नहीं हुआ होगा। नागरिकता संशोधन कानून 2014 में सीमा निर्धारित कर रहा है जबकि उसका बचाव सन 1940 के दशक में हुए विभाजन के दौर के अत्याचारों के आधार पर किया जा रहा है। निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि जिन लोगों ने 90 प्रतिशत से अधिक की दर से कर चुकाया और पीड़ित हुए वे अपनी संतानों के लिए कुछ बेहतर नहीं कर पाए और इसलिए उस उत्पीड़न को सन 1970 के दशक तक सीमित नहीं किया जा सकता।

इसके बाद इस दलील की कल्पना कीजिए कि कानून संवैधानिक है और इसलिए यह एक अच्छा कानून है। यकीनन आय के स्वैच्छिक खुलासे की कई योजनाओं, काले धन की माफी की योजनाओं और ऐसी तमाम योजनाओं को भी संवैधानिक ठहराया गया जिसमें लोग गंगा में डुबकी लगाकर पवित्र हो जाते हैं। सन 1990 के दशक के मध्य में तत्कालीन संयुक्त मोर्चा सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय से वादा किया था कि बेनामी संपत्ति को इस तरह स्वच्छ बनाने की गतिविधि बंद की जाएगी। परंतु इसके साथ ही यह एक कानूनी सिद्धांत भी है कि राजकोषीय विधान के मसलों में कोई विबंधन नहीं किया जा सकता है। आम आदमी की भाषा में कहें तो कानून बनाने की संप्रभु शक्ति को यह कहकर सीमित नहीं किया जा सकता कि कोई विशिष्ट कानून नहीं बनाया जा सकता। इकलौती चुनौती संवैधानिक मान्यता के स्तर पर सामने आ सकती है।

संवैधानिक वैधता के प्रश्न का उत्तर न्यायपालिका ही दे सकती है। इसके अलग-अलग हिसाब से कई नतीजे सामने आ सकते हैं। अमेरिका में राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने कुछ खास मुस्लिम देशों से यात्रियों के अमेरिका आने पर कार्यकारी आदेश के जरिये रोक लगाई। कुछ न्यायाधीशों ने इसे असंवैधानिक बताया जबकि कुछ अन्य ने उसे कानूनी करार दिया। असंवैधानिक ठहराने वालों ने ट्रंप के चुनावी भाषणों का ध्यान रखा जिसमें मुस्लिम देशों से लोगों के आने पर रोक का असंवैधानिक वादा किया गया था। अमेरिकी राष्ट्रपति के विधि अधिकारियों ने यह कहते हुए कानून का बचाव किया कि न्यायाधीशों को भाषणों पर ध्यान नहीं देना चाहिए बल्कि कानून की भाषा को देखना चाहिए। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय दलील से सहमत था। हालांकि यह भी कहना होगा कि ट्रंप ने संवैधानिक लड़ाई जीतने के लिए संशोधित प्रतिबंध आदेश में कुछ गैर मुस्लिम देशों का नाम शामिल किया। भारत में नागरिकता संशोधन अधिनियम कानून खामोशी के साथ किया जा रहा 'धार्मिक उत्पीड़न' है। अच्छा (संवैधानिक रूप से वैध) कानून और तार्किक कानून (स्वीकार्यता की दृष्टि से) अलग-अलग हो सकते हैं।

भारत में कारोबारी और उद्योग जगत के लोगों में राष्ट्रवाद की शरण लेने का पुराना रुझान है। ऐसे में यह तुलना ज्ञानवर्धक हो सकती है कि अगर नागरिकता संशोधन कानून कारोबारी जगत में लागू हो तो क्या होगा? जब ढेर सारे बटन एक साथ दबाए जाते हैं। यानी धार्मिक भेद बनाम भाषाई अंतर, आश्रय कानून बनाम नागरिकता कानून, विभाजन युग बनाम सात दशक बाद की राजनीति आदि पर एक साथ बात बहस शुरू होती है तो उम्मीद की जानी चाहिए कि इससे कोई गंभीर बात निकलेगी। हकीकत में समाज में वही कानून बरकरार रहता है जो उसे समझ में आता है। अलोकप्रिय समाज सुधारों का क्रियान्वयन उस समय आसान होता है जब उसके पीछे बाहरी औपनिवेशिक ताकत का दबाव हो। उदाहरण के लिए सती प्रथा पर रोक। एक लोकतांत्रिक देश में वही कानून बनते हैं जिनके हम योग्य होते हैं।

(लेखक अधिवक्ता एवं स्वतंत्र परामर्शदाता हैं)

कानाफूसी

प्याज का किस्सा

देश में प्याज की कमी का संकट उसके द्विपक्षीय रिश्तों को भी प्रभावित कर रहा है। पड़ोसियों ही नहीं बल्कि संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों के साथ भी। भारत ने गत 29 सितंबर से प्याज के निर्यात पर प्रतिबंध लगा रखा है। इसके चलते समूचे पश्चिम और दक्षिण एशिया में भारी कमी हो गई है। हर कोई भारतीय प्याज को पसंद करता है और खरीदना चाहता है। नेपाल में जहां भारतीय प्याज का बाजार पर दबदबा रहा है, वहां निर्यात पर रोक के कारण बड़ा बदलाव देखने को मिल रहा है। नेपाल अब चीन से प्याज खरीद रहा है और नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी और प्रधानमंत्री के पी ओली को यह पसंद भी आ रहा है। चीनी प्याज से लदे ट्रक सीमावर्ती इलाकों में देखे जा रहे हैं। नेपाल के ढाबों में एक विशेष मोदी मेन्यू देखने को मिल रहा है जिसमें खासतौर पर ऐसा भोजन शामिल किया गया है जिसमें प्याज का इस्तेमाल नहीं किया जाता है। उधर पड़ोसी मुल्क बांग्लादेश में भी प्याज का संकट गहरा गया है। पहले वहां एक किलो प्याज 30 टका में मिलता था, वहीं अब उसका दाम 260 टका हो गया है। विपक्षी दलों का इल्जाम है कि सरकार प्याज संकट से ठीक तरह से नहीं निपट रही। प्रधानमंत्री शेख हसीना ने कहा है कि वह खुद प्याज का इस्तेमाल बंद कर चुकी हैं।

के पी ओली

आपका पक्ष

स्वरोजगार और बेरोजगारी का हल

वर्ष 1951-52 में जब पंचवर्षीय योजना को हरी झंडी दी गई थी तब इस पर विनोबा भावे ने कहा था कि सरकार की सभी राष्ट्रीय योजनाओं का मकसद रोजगार बढ़ाना भी होना चाहिए। बेरोजगारी से निपटने के लिए सरकार को योजनाएं ही नहीं बल्कि उसे अमल में लाने के लिए भी गंभीरता दिखानी चाहिए। सरकार को ऐसी कोई योजना या नीति बनाने से परहेज करना चाहिए जिससे किसी भी उद्योग-धंधे पर नकारात्मक असर पड़े। भारत जनसंख्या के मामले में दुनिया में दूसरे पायदान पर है। बढ़ती आबादी ने देश में बहुत-सी समस्याओं को जन्म दिया है। इन समस्याओं में से सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी भी है। काम कोई छोटा-बड़ा नहीं होता लेकिन जिसने अपनी पढ़ाई पर लाखों रुपये खर्च किए हों और उसे यकीन हो कि उसे योग्यता और मेहनत की अपेक्षा कम वेतन मिलेगा तो वह अपने काम को मन से नहीं करेगा। अक्सर यह भी देखा गया है कि सरकारी विभागों में चपरासी या तृतीय, चतुर्थ श्रेणी के पदों के लिए भी बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे डिग्रीधारक आवेदन करते हैं, क्योंकि इन्हें यहां संतुष्ट करने वाला वेतन मिलने की आस होती है। लेकिन इसमें भी कोई दोराय नहीं है कि कुछ युवा ऐसे भी होंगे जो थोड़ा बहुत पढ़ लिखकर बाबू बनने से कम कोई काम नहीं करना चाहते होंगे। आज जिस तरह देश में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है उसे देखते हुए अब सरकार को स्वरोजगार के मौके बढ़ाने के बारे में सोचना चाहिए। सभी बेरोजगार युवाओं को सरकारी नौकरी देना संभव नहीं है, लेकिन सरकार स्वरोजगार को बढ़ावा देकर देश में रोजगार के अवसर बढ़ा सकती है। सरकार ने इसके लिए विभिन्न योजनाएं शुरू की है लेकिन इसमें कुछ कमियां रह गई हैं जिससे बेरोजगार युवा स्वरोजगार के प्रति उत्साहित नहीं दिखते हैं। अगर स्वरोजगार की बात की जाए तो उसके लिए धन चाहिए और यह सुविधा सबके पास नहीं है। सरकारी ऋण भी कुछेक को मिल पाता है। अन्यथा ज्यादातर युवा इसे पाने की कोशिश में सरकारी दफ्तरों के चक्कर लगाते रहते हैं। अगर सरकार कृषि, मत्स्य पालन और हर गांव में छोटी-बड़ी दूध की डेयरी खोलने के लिए लोगों को विशेष पैकेज जारी करे तो इससे सरकार को भी काफी कमाई हो सकती है।

केंद्र और राज्य सरकार को रोजगार सृजन और स्वरोजगार के लिए कदम उठाने चाहिए

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

सरकारी कंपनियों के विनिवेश की जानकारी

सरकारी पूंजी से ही केंद्र सरकार के उपक्रम या कंपनियां बनी हैं। सरकार ने ही इन्हें कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत कराया है। लिहाजा हर हाल में उसे उनका विनिवेश करने का अधिकार है। आखिर विनिवेश से प्राप्त राशि कहीं तो निवेश होनी ही है। चूंकि सरकारी कंपनियां जनता के द्वारा दी गई पूंजी से निर्मित हुई है इसलिए जनता को यह हक है कि विनिवेश कर प्राप्त राशि का पुनर्निवेश कहां किया जा रहा है इस बात को सरकार को सार्वजनिक करना चाहिए। किस उपक्रम या कंपनी का विनिवेश किस होशियारी से किया जाता है यह भी सरकार पर ही निर्भर है। जिस तरह बैंकों को आपस में मिलाकर उनकी संख्या में कमी कर दी गई है उसी तरह अक्षम, अकुशल, निरंतर घाटे में चल रहे उपक्रमों का भी निस्तारण सूझबूझ के साथ हो जाना चाहिए।

हिम्मत जोशी, नागपुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।